अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

गुप्त कालीन भोजन विधि एवं नियम

डा. अजय कुमार, सहायक प्राध्यापक
(इतिहास विभाग) हिन्दु महाविद्यालय, सोनीपत

भोजन करते समय अपनाए जाने वाले नियम और धर्मानुसार भोजन व्यवहार भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन की महत्त्पूर्ण विशेषता रहे हैं। इन नियमों का पालन करना धर्मानुसार आचरण के लिए अनिवार्य माना जाता था, इस कारण इस पर बल दिया जाता था कि प्रत्येक व्यक्ति भोजन की शुद्धता का तो ध्यान रखे ही वह इसका भी ध्यान रखे कि वह धर्मानुसार खान–पान व्यवहार कर रहा है अथवा नहीं। इस प्रकार भोजन व्यवहार भारतीय धार्मिक कार्यकलापों का ही एक अंग बन गया था। प्राचीन काल से ही भारतीयों द्वारा भोजन ग्रहण करने संबंधी नित्यक्रम में जहां भोजन की शुद्धता, पवित्रता का ध्यान रखा जाता था, वहीं भोजन के सात्विक गुणों तथा उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में भी पूर्ण ध्यान रखा जाता था। भोजन विधि की रूपरेखा प्रस्तुत करते समय शास्त्रकारों ने केवल पाप और पुण्य का ही विचार नहीं किया, अपितु इसके द्वारा आरोग्य, बल और बुद्धि के संवर्द्धन की योजना भी प्रस्तुत की है। भोजन संम्बन्धित सम्पूर्ण प्रक्रिया में शुद्धता, स्वच्छता का होना अनिवार्य माना जाता था। सुव्यवस्थित तथा स्वच्छ भोजनशाला की कामना की गयी थी। गुप्तकालीन भेजन विधि नियमों के विषय में तत्कालीन साहित्य, पुरातात्त्विक स्त्रोतों एवं विदेशी यात्रियों के वृत्तांतों से महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। सुश्रुत सूत्र[1] में उल्लेख मिलता है कि भोजनशाला विश्वस्त पुरूषों से युक्त वृहद् तथा खुले स्थान पर पवित्र एवं स्वच्छ होनी चाहिए। रसोईघर को सुरक्षित और मनोरम रखने का विधान था। अमरकोष[2] के अनुसार सभ्यता के विकास के साथ ही आर्यों ने प्राचीन काल से ही रसोईघर को साफ–स्वच्छ और ऐसे स्थान पर श्रेष्ठ माना था जहां रोशनी की जा सके और जहां पर कोई अपरिचित मनुष्य न पहुंच सके। भोजनशाला एकान्त स्थान में सुन्दर, बाधा रहित, खुली, पवित्र, देखने में प्रिय, पुष्पों से सज्जित तथा सुनियोजित रखी जाती थी। खाना खाने के स्थान पर लोग पुताई करते थे। मृच्छकटिक[3] में बसंतसेना की सुव्यवस्थित भोजनशाला का विशद् वर्णन किया गया है। रसोईघर की देखभाल करने के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति भी की जाती थी।[4] धनी व्यक्तियों के घरों में भोजन की शुद्धता तथा कहीं भोजन में विष न मिला हो, इसकी भली–भाँति जांच कर ली जाती थी।[5] भोजन परोसने वालों की भी स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था। भोजन परोसते समय रसोइये सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सुसज्जित रहते थे। राजाओं के यहां रसोई परोसने वाली स्त्री स्नान करके, शुद्ध वस्त्र धारण करके, नवीन धूप से सुगन्धित अंगों वाली, कपूर गन्ध युक्त मुखवाली, सुन्दर नैत्रों

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

वाली, कुन्दन के समान लाल ओंठ वाली, सिर में सुगन्धित फूल बांधने वाली तथा मन्द–मन्द मुस्कान वाली होती थी।[6] धनी लोग विशेष बर्तनों का प्रयोग करते थे। राजाओं के घरों में भोजन सोने–चाँदी के पात्रों में बनाया जाता था, क्योंकि ये पात्र सब दोषों का नाश करने वाले तथा बुद्धि को उत्सारित करने वाले माने जाते थे।[7] आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से विभिन्न भोज्य पदार्थों को अलग–अलग प्रकार के बर्तनों में परोसना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना जाता था। सुश्रुत सुत्र[8] में वर्णित है कि काले लोहे के पात्र में घृत, चाँदी के पात्र में पेय, द्रव और रसदार पदार्थ, पत्तलों में फल और सभी प्रकार के भक्ष्य, सोने के पात्र में सूखे और चिपकने वाले पदार्थ (प्रादिग्ध), पत्थर के पात्रों में सभी खट्टी वस्तुएं खानी चाहिए। मिट्टी के पात्र में पानी, शर्बत और शराब, तांबे के पात्र में खौलाकर ठण्डा किए हुए दूध को पीना चाहिए। रागषाड्व और खट्टक (अर्ध तरल पदार्थ) को कांच–स्फटिक, वैदूर्य (लहसुनिया) के शीतल और शुभ बर्तनों में ही प्रयोग करना चाहिए। सामान्यजनों द्वारा सभी प्रकार के बहुमुल्य पात्रों का प्रयोग संभव नहीं था, किन्तु समृद्धशाली लोग मुख्यतः सोने, चाँदी तथा तांबे के बर्तन ही प्रयोग करते थे।[9] इस समय भी समय पर भोजन करने का विशेष महत्त्व माना जाता था। सामान्यतः दिन में तीन बार भोजन किया जाता था। प्रतीत होता है कि शाम को भोजन नहीं किया जाता था। लेकिन कुछ लोग सायंकालीन भोजन भी करते थे। भिक्षु सामान्यतः दिन में किसी भी समय खाद्य भोजन के रूप में पेय ले लेते थे। आधी रात को, दोपहर को अथवा जब व्यक्ति अपच से पीड़ित हो उस समय भोजन करना अनुचित माना जाता था। यह स्वास्थ्य के लिए अहितकर था। कहा गया है कि समय बीत जाने पर भोजन करने वाले मनुष्य की उदराग्नि के वायु द्वारा विकृत हो जाने पर खाया हुआ अन्न देर से पचता है और उसके पश्चात् दूसरे भोजन की आवश्यकता नहीं होती।[10] भोजन करते समय शुद्धता एवं स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था। दूषित भोजन, दूषित व्यक्ति द्वारा अथवा अशिष्ट व्यक्ति के द्वारा परोसा गया भोजन खाना निषेध माना गया था। कहा गया है कि एक पापी द्वारा परोसा गया भोजन खाने वाला व्यक्ति भी पापी हो जाता है।[11] जाति तथा वर्ण के आधार पर भोजन ग्रहण करने से सम्बन्धित नियमों के उल्लेख भी मिलते हैं। शूद्र का भोजन ब्राह्मण के लिए अग्राह्य माना गया था। कहा गया है कि शूद्र का भोजन करने से ब्राह्मण की अध्यात्म शक्ति एवं बुद्धि क्षीण होती है। नास्तिक लोगों, अनार्य क्षेत्रों में रहने वाले लोगों तथा लिंग पूजक लोगों का भोजन भी ग्रहण करना निषेध माना गया था। विपत्ति के समय ही नियमानुसार किसी अन्य से भोजन ग्रहण किया जा सकता था। अतः भिक्षा से प्राप्त किया गया भोजन स्वयं की मृत्यु के समान माना गया तथा बिना भिक्षा के प्राप्त हुआ भोजन अमृत के समान माना गया था। अंधेरे में, मंदिर में अथवा अपनी पत्नी के साथ, टूटे हुए बर्तनों में भोजन करना अथवा गोद में रख कर या फिर अपने हाथों की हथेली में रखकर भोजन करना निषेध

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

था। सिर पर वस्त्र रखकर तथा पांवों में जूते पहनकर भी भोजन करना निषेध माना गया था। खाते समय पूर्व की तरफ मुँह करने की अपेक्षा की जाती थी। शुद्ध भूमि पर बैठकर, हाथ–पांव धोकर, सही समय तथा सही स्थान एवं उचित बर्तनों में ही भोजन करने का निर्देश दिया गया था।[12] विष्णु पुराण[13] में कहा गया है कि भोजन पात्र पवित्र होंने चाहिए और ये कुर्सी अथवा तख्त पर नहीं रखे होंने चाहिए। जिस स्थान पर भोजन किया जाए वह शुद्ध होना चाहिए, भोजन का स्थान बड़ा होना चाहिए और भोज्य पदार्थों में से सर्वप्रथम अग्नि को आहुति देनी चाहिए। भोजन से पूर्व स्नान, स्तुति तथा दिशा का विशेष ध्यान रखा जाता था। मार्कण्डेय पुराण[14] के अनुसार गृहस्थ के लिए भोजन करने का यह नियम था कि वह स्नान करके हाथ में रत्न लेकर यज्ञ आदि सम्पादित करके शुद्ध विचारपूर्वक आश्रित और अतिथि लोगों को भोजन करवाकर, सुगन्ध लगा लेने के पश्चात् माला धारण कर सर्वथा निवृत्त होकर, हाथ–पैर धोकर, केवल एक ही वस्त्र धारण करके, मुँह को शुद्ध करके, किसी ओर न देखते हुए पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके अनन्य मन से भोजन करें। ऋतुओं के अनुसार ही स्वास्थ्यवर्द्धक आहार खाने के निर्देश दिए गए। कहा गया कि भोजन गर्म, कुछ वसा के साथ तथा पौष्टिक लेना चाहिए तथा आराम से एवं शान्तचित्त होकर ही खाना चाहिए। अधिक भोजन तथा एक ही प्रकार का भोजन बार–बार नहीं करना चाहिए। पचने में कठोर तथा स्वास्थ्य के लिए अहितकर भोज्य पदार्थों का भी उल्लेख किया गया। कहा गया कि स्वास्थ्य की दृष्टि से भोजन करते समय भोजन के रसों का अनुक्रम मधुर, लवण, अम्ल, कटु और तीखा होना चाहिए। फल जैसे अनार सबसे पहले फिर पेय फिर अन्य भोज्य वस्तुएं खानी चाहिए। कमल की डंठल, जड़ और कंदमूल कभी भी भोजन के अन्त में नहीं खानी चाहिए। कहा गया कि जो व्यक्ति पहले द्रव पदार्थों को, बीच में ठोस वस्तुओं को और अंत में फिर द्रव पदार्थों को खाता है वह कभी बल और अरोग्य से हीन नहीं होता है।[15] भोज्य पदार्थों को प्रयोग करने संबंधी सामान्य नियम अब भी प्रचलित थे। भोजन में प्याज, लहसुन का प्रयोग निषेध था। तपस्वी और नवविवाहित दम्पत्तियों के लिए नमकीन भोजन निषेध माना गया था। व्रत के समय गुड़, घृत, दही के साथ उबले हुए चावल अथवा अकेले चावल का भोजन ही सही माना जाता था। जबकि शाक, माष, मसूर, चना, कोरदूषक, शहद कुछ क्षारीय भोज्य और समुद्री नमक का प्रयोग करना निषेध था। श्राद्ध के अवसर पर मसूर, निष्पाव, राजमाष, कुसुम्भ, कमल, बिल्व, कोद्रव, उदार, चना, कपिथा, बकरी का दूध, कुछ मसालों तथा शाकों का प्रयोग निषेध माना गया था। इस अवसर पर मुख्यतः तिल, मांस, घृत, दूध, शहद, गन्ना, फलों के रस, अन्न जैसे श्यामक, शालि, नीवार, मुद्ग, जौ इत्यादि का प्रयोग किया जाता था। निर्धनों को धार्मिक कृत्यों पर फलों, जड़ों, तिल और पानी का प्रयोग करने की आज्ञा थी।[16] तपस्वियों से भोजन में संयम रखने की ही आशा की जाती थी। वायु पुराण[17] के अनुसार तपस्वी

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

को किसी एक ही भोज्य पदार्थ पर आसक्ति नहीं होनी चाहिए और न ही उसे शहद, मांस और नमक ही खाना चाहिए। उसे बिना पकाया भोजन भी ग्रहण नहीं करना चाहिए, लेकिन एक शूद्र बिना पकाया भोजन ग्रहण कर सकता था।[18] भोजन से सम्बन्धित इन बातों को ध्यान में रखकर ही भोजन करने की आशा की जाती थी। भोजन करने के उपरांत पालन किये जाने वाले कुछ नियम भी प्रचलित थे। पहले की तरह अब भी भोजन करते हुए अन्त में भोजन पात्र में पशु–पक्षियों तथा छोटे कीटों के लिए कुछ अन्न बचाना अच्छा माना जाता था, लेकिन तरल पेयों एवं खाद्यों जैसे शहद, दही, घृत, तथा शष्कुली जैसे स्वादिष्ट व्यंजनों को छोड़ना अनुचित माना गया। भोजनोपरान्त हाथ–मुँह धोने का विशेष ध्यान रखा जाता था। जो लोग ऐसा नहीं करते थे उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था।[19] आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से भोजन के पश्चात् सौ कदम चलकर वाम–पार्श्व लेटना तथा कुछ समय विश्राम करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक माना गया है तथा कहा गया है कि भोजनोपरान्त न तो अधिक देर लेटना चाहिए और न सोना चाहिए, न बैठना चाहिए और न ही अधिक पानी ही पीना चाहिए। भोजन करने के पश्चात् लोग प्रायः अपनी पाचन शक्ति को बढ़ाने के लिए कुछ पेय जैसे ठंडा या गरम पानी, मदिरा, सत (अर्क, आसवन), फीका सूप, खट्टी लपसी, अथवा फलों के रसों में से कोई भी एक अपनी प्रकृति के अनुसार लेते थे।[20] भोजन करने के उपरान्त पान भी खाया जाता था तथा इसमें अनेक प्रकार के सुगन्धित मसाले मिला लिए जाते थे। पान को चबाने के पश्चात् उसका रस फैंकने के लिए पीकदान का प्रयोग किया जाता था।[21] पान का प्रयोग करते समय सावधानी रखना भी आवश्यक माना जाता था। भोजन करने के पश्चात्, स्नान के पश्चात् और वमन के पश्चात् ही पान खाने का निर्देश दिया गया था।[22] इसके अतिरिक्त रक्त–पित्त के दोष से पीड़ित, क्षत–क्षीण, प्यासे, मूर्च्छा युक्त, रूखे, दुर्बल और सूखे मुख वाले व्यक्तियों द्वारा ताम्बूल प्रयोग करना उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना गया था। भोजनोपरान्त धनी व्यक्ति अनेक प्रकार से अपना मनोरंजन भी करते थे। वे तोतों अथवा सारिका पक्षियों की वार्ता सुनते, बटेर, मुर्गों अथवा भेड़ों की लडाई देखते अथवा नटों और मसखरों के प्रदर्शनों को देखकर अपना मन बहलाते थे।[23] भारतीय समाज में प्रचलित इन भोजन संबंधी नियमों तथा कार्यकलापों के अतिरिक्त अन्न दान का भी पूर्ण महात्मय रहा है। प्राचीन भारतीय समाज में भिक्षुओं, साधुओं और निर्धनों को मुक्तहस्थ भोजन वितरित किया जाता था। यह अवस्था समाज में सर्वत्र विद्यमान थी। विदेशी यात्री भी इसका उल्लेख करते हैं। फाइयान[24] कहते हैं कि ‘‘मथुरा के निकट के राजा स्वंय अपने हाथों से भिक्षुओं के समूहों को भोजन परोसते थे, तब अपने मुकुटों को उतार देते थे और वे उस समय जमीन पर बिछाए गए बिछौने पर ही बैठते थे न कि आसन पर।’’ अनेक प्राचीन भारतीय अभिलेखों में भी पुण्य–शालाओं के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें गरीबों, भिक्षुओं के लिए भोजनादि की व्यवस्था की

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

जाती थी। कुमारगुप्त[25] के लेख से ज्ञात होता है कि साधु, भिक्षु तथा अनाथ व्यक्तियों के लिए निःशुल्क भोजनादि की व्यवस्था की गयी थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय[26] के लेखों में स्थान–स्थान पर भिक्षुओं के निमित्त दान का उल्लेख है। ज्ञात होता है कि इस समय बारह दीनारों के सूद से प्रतिदिन एक भिक्षु के भोजन का प्रबन्ध हो जाता था। दूसरे लेख में विवरण मिलता है कि आम्रकार्दव नामक भोजन दान किया जाता था। नालन्दा महाविहार में रहने वाले भिक्षुओं के भोजन, आवास, चिकित्सा आदि के प्रबन्ध के लिए कई सौ गांव दान में दिए गये थे।[27] इस समय अनेक समारोहों, धार्मिक आयोजनों में भी भोजों की व्यवस्था की जाती थी, जहां लोग विभिन्न प्रकार के मादक द्रव्यों, नमकीन पकवानों, फलों, शाकों, रसों और चटनियों से युक्त विभिन्न प्रकार के भोजन खाते थे। यह भोजन सभी लोगों, सम्बन्धियों, नौकरों तथा दास–दासियों को समान रूप से परोसा जाता था।[28] इस समय अतिथि–सत्कार पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। अतिथि–सत्कार पुण्य कार्य माना गया था। विष्णु पुराण[29] में कहा गया है कि मनुष्य को अतिथि–सत्कार के लिए निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए। जो व्यक्ति अतिथि को भोजन कराए बिना भोजन करते हैं वे पाप के भागी होते हैं। बिना होम किए भोजन करने वाला कीड़ों को खाने वाला तथा विष–भोगी माना गया था। मार्कण्डेय पुराण[30] भी अपने आश्रित तथा अतिथि को भोजन कराने के बाद ही गृहस्थ को भोजन करने की आज्ञा देते हैं।

संदर्भ

1. सुश्रुत सूत्र, 46/446,
2. अमरकोष, 2/9/27–28,
3. मृच्छकटिक, 4, पृ0 237,
4. समुद्र गुप्त का इलाहाबाद अभिलेख, अमरकोष, 2/9/27,
5. मत्स्य पुराण, 219/18–20,
6. सुश्रुत सूत्र, 46/458,
7. वही, 46/449–57,
8. वही, 46/449– 453,
9. वायु पुराण, 74/1,
10. मालविकाग्निमित्र, 2/35; मृच्छकटिक, भाग 28, न0 1, पृ0 117; कामसूत्र, 1/4/7,
11. विष्णु पुराण, 3/11/66–68; वायु पुराण, 74/31; कुर्म पुराण, 19,
12. बृहस्पति स्मृति, श्राद्ध खण्ड, 43; मत्स्य पुराण, 16; कुर्म पुराण, 2/17–19; अमर कोष, 3,
13. विष्णु पुराण, 3/11/75–84,
14. मार्कण्डेय पुराण, 34/42,
15. सुश्रुत सूत्र, 64/55, 46/491, 460–464; विष्णु पुराण, 3/2/82–83, 3/11/73,
16. कुर्म पुराण, 2/17; कामसूत्र, 291/1; मृच्छकटिक, 1/14; कात्यायन स्मृति, 27,
17. वायु पुराण, 18/16–20,
18. मत्स्य पुराण, 17/10,
19. विष्णु पुराण, 3/11/82, 85–87,

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 6.789 Volume 11-Issue 01, (January-March 2023)

20. सुश्रुत सूत्र, 46/87, 46/490, 46/420,
21. रघुवंश, 6/64, 13/17; बृहत्संहिता, 77/35–37; मृच्छकटिक, 4; कामसूत्र, 1/4/5, 4/1/18,
22. सुश्रुत सूत्र, 24/19–20,
23. कामसूत्र, 1/4/8,
24. फाहियान्स रेकार्ड ऑफ बुद्धिष्ट किंग्डम्स, जेम्स लेग्गेज का अनुवाद, अध्याय 6,
25. एपिग्राफिआ इण्डिका, 14, पृ0 636,
26. वासुदेव उपाध्याय, गुप्त अभिलेख, पृ0 58,
27. वही, अध्याय, 4, पृ0 53,
28. कामसूत्र, 1/4/23; कुर्म पुराण, 22; मत्स्य पुराण, 28/57, 62,
29. विष्णु पुराण, 3/11/71, 72,
30. मार्कण्डेय पुराण, 34/42,

सहायक ग्रंथ

उपाध्याय, भगवतशरण : गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति रचना विभाग, उ.प्र. लखनऊ, 1969

पाण्डेय, विमलचन्द्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, हिन्दुस्तान ऐकेडमी, इलाहाबाद 1960

मजूमदार, आर. सी. : प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1962

वर्मा, गायत्री : कालीदास के ग्रन्थों पर आधारित प्राचीन भारतीय संस्कृति, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1963

गुप्त, परमेश्वरी लाल : गुप्त साम्राज्य, वाराणसी, 1991

थापर, रोमिला : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, इतिहास ग्रंथशिल्पी, नई दिल्ली, 2001

उपाध्याय, भगवतशरण : कालीदास का भारत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, 1964

Upadhyaya, B.S. : India in the age of Kalidasa, Allahabad, 1947

Singh, U.N. : Ancient Indian Culture & Literature, Delhi Book Linkers, Delhi, 1980

Sharma, B.N. : Social life in Northern India, M.M. Publication Delhi, 1961

Bhattacharya, Haridas: Cultural Heritage of India, Ramkrishan Mission, Calcutta, 1963